इकाई 18 संस्मरण (महादेवी वर्मा)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 संस्मरण : एक साहित्यिक विधा
18.3 संस्मरण और अन्य विधाएं
18.4 'पथ के साथी' संस्मरण का पठन
18.5 संस्मरण का सार
18.6 संस्मरण की अंतर्वस्तु
18.7 संस्मरण की भाषा-शैली
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

हिंदी में आधार पाठ्यक्रम-2 (एफ.एच.डी.-2) के तीसरे खंड की यह अंतिम इकाई है। इस इकाई में आप महादेवी वर्मा द्वारा हिंदी कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान के बारे में लिखा संस्मरण 'पथ के साथी' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संस्मरण की प्रकृति और विशिष्टता का उल्लेख कर सकेंगे,
- संस्मरण और अन्य साहित्यिक विधाओं के पारस्परिक संबंधों को बता सकेंगे,
- 'पथ के साथी' संस्मरण की अंतर्वस्तु संबंधी विशेषताएं बता सकेंगे, और
- उक्त संस्मरण की भाषा और शैली की विशेषताओं को बता सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम बता चुके हैं, इस इकाई का संबंध हिंदी में आधार पाठ्यक्रम (एफ.एच.डी.-2) से है। इस पाठ्यक्रम के तीसरे खंड में आप साहित्य की विविध विधाओं का अध्ययन कर रहे हैं। अब तक आपने डायरी, पत्र, रिपोर्ताज, यात्रा वृत्तांत और जीवनी विधाओं का अध्ययन किया है। यह इस खंड की अंतिम इकाई और पाठ्यक्रम की 18वीं इकाई है। इस इकाई में आप संस्मरण विधा का अध्ययन करेंगे।

आधुनिक गद्य विधाओं में संस्मरण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। संस्मरण का अर्थ है, बीते हुए को याद करना। जब हम किसी ऐसे व्यक्ति को याद करते हैं, जिसके साथ हमने अपने जीवन के कुछ अहम् क्षण बिताए थे और इन क्षणों को जब दूसरों के साथ बांटना चाहते हैं तो हम संस्मरण लिखने की ओर प्रवृत्त होते हैं। हिंदी में संस्मरण लिखने की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है। गद्य साहित्य के साथ ही संस्मरण लिखने की ओर भी लेखकों की प्रवृत्ति हुई। इनमें महादेवी वर्मा का योगदान सबसे अधिक है। रेखाचित्र और संस्मरण विधा को जितना महादेवी वर्मा ने समृद्ध किया है किसी ओर ने नहीं। महादेवी वर्मा मूलतः कवि हैं और छायावादी काव्य को समृद्ध करने में उनका योगदान अप्रतिम है।

हिंदी में संस्मरण-साहित्य के संदर्भ में महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'पथ के साथी' में संकलित उनके समकालीन साहित्यकारों के संस्मरणों की प्रकृति और पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना इस इकाई का उद्देश्य है। इन संस्मरणों में से एक - 'सुभद्रा कुमारी चौहान' - हमारे इस अध्ययन का मुख्य आधार है। अतः उसकी विशेषताओं का विश्लेषण इस इकाई का मुख्य अभिप्रेत है। इस प्रक्रिया में संस्मरण की प्रकृति को समझते हुए अन्य गद्य विधाओं से उसके अंतर को भी स्पष्ट किया जाएगा। पाठ्यक्रम में निर्धारित संस्मरण के विश्लेषण के अंतर्गत संस्मरण की भाषा, शिल्प का अध्ययन भी हमारा अभिप्रेत है।

18.2 संस्मरण : एक साहित्यिक विधा

संस्मरण एक अंतर्विरोधी प्रकृति वाला साहित्य रूप है। उसके लिखे जाने के लिए परिचय का विस्तार बहिर्मुखता की माँग करता है, जबकि उसका कलात्मक रचाव हार्दिकता एवं अंतर्मुखता की अपेक्षा रखता है। एक सीमा तक ही इन दोनों को साध पाना संभव होता है। यही कारण है कि अच्छे और उल्लेखनीय संस्मरण किसी भी भाषा में बहुत अधिक नहीं होते। लेखक की स्वभावगत संकोची वृत्ति, यात्रा-भीरुता और मित्र बनाने की कला का अभाव कुछ ऐसे कारक हैं जो संस्मरण-लेखन के विरोध में जाते हैं। अंतरंगता संस्मरण की शिराओं में प्रवाहित रक्त की तरह है जो उसके स्वास्थ्य में एक खास तरह की चमक पैदा करती है। इसके अभाव में संस्मरण के नाम पर लिखी जाने वाली कोई भी रचना रक्त शून्यता की शिकार हो सकती है। औपचारिकता और अविश्वसनीयता जैसे तत्व संस्मरण के सबसे बड़े शत्रु हैं। इसीलिए सामान्यतः संस्मरण परिचय की माँग करता है। जिस व्यक्ति के संस्मरण लिखे जा रहे हैं उसकी रचना-दृष्टि, सामाजिक दायित्व और विभिन्न मुद्दों पर प्रकट किए गए विचार पूरी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता के साथ उनमें आने चाहिए। अपनी प्रकृति में संस्मरण आगे-पीछे दोनों ओर लगे शीशे की तरह होता है जिसमें दीखने वाले के साथ दिखाने वाला भी कहीं न कहीं प्रतिबिंबित होता है। यही कारण है कि संस्मरण केवल उसे ही आलोकित नहीं करता जिस पर वह लिखा गया है। एक सीमा तक वह अपने रचयिता का भी परिचय देता है। राजेंद्र यादव जैसे लेखक जब अपने संस्मरणों को संकलित करते हुए 'औरों के बहाने' शीर्षक देते हैं तो उससे यही ध्वनित होता है कि औरों के बहाने इनका रचयिता अपने बारे में भी बहुत कुछ कहता है। अपने एक व्यंग्य-लेख में हरिशंकर परसाई ने उन संस्मरण लेखकों का मज़ाक उड़ाया है जो संस्मरण लिखते समय दूसरों से अधिक अपने बारे में लिखते हैं। ऐसे संस्मरण अपने विषय को गौण मानकर रचयिता को ही मुख्यतः केंद्र में रखते हैं। एक अच्छा और प्रामाणिक संस्मरण वही होता है जिसमें लेखक अपने को पृष्ठभूमि में रखकर अपने विषय के विविध पक्षों को समादर, आत्मीयता और विनम्रता के साथ धैर्यपूर्वक खोलता चलता है। संस्मरण का विषय अर्थात् वह व्यक्ति जिस पर संस्मरण लिखा जा रहा है, अपनी सारी विशिष्टताओं के साथ दूसरों की तरह एक सामान्य मनुष्य ही होता है। अतः यह ज़रूरी है कि उसे हाड़-मांस के एक मनुष्य की भांति ही प्रस्तुत किया जाए। किसी भी प्रकार की व्यक्ति-पूजा का भाव संस्मरण लेखन की प्रकृति से मेल नहीं खाता। जिस व्यक्ति को संस्मरण के लिए चुना गया है, उसके इस चुनाव में ही यह निहित है कि वह रचयिता का प्रिय और आदरणीय है। ऐसे व्यक्ति का जो प्रभाव लेखक पर पड़ा है उसका आकलन ही वह अपने संस्मरण में करता है। आदर्श संस्मरण वही है जिसमें लेखक अपने विषय के प्रति सारे समादर के साथ किसी प्रकार की एकांगिता से बचकर चलता है। अपने संस्मरण के लिए चुने गए व्यक्ति को संपूर्ण और विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी यह ज़रूरी है कि संस्मरण में संतुलन और वस्तुपरकता के महत्व को समझा जाए। एक अच्छा संस्मरण अपने विषय के प्रति आत्यंतिक विनम्रता और वस्तुपरकता के योग से ही संभव होता है।

18.3 संस्मरण और अन्य गद्य विधाएं

परिचय के सघन वृत्त में आने वाले किसी भी व्यक्ति को केंद्र में रखकर लिखा जा सकता है लेकिन आमतौर पर साहित्यिक व्यक्तियों के संस्मरण ही अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। जिस व्यक्ति को केंद्र में रखकर संस्मरण लिखा जाता है, संस्मरण लेखक उस व्यक्ति के जीवन के किसी विशेष काल अथवा खंड को ही अपने लिए चुनता है। उस संबद्ध दौर में उस व्यक्ति के अनेक पक्षों की जानकारी उस संस्मरण से मिलती है। लेकिन किसी भी व्यक्ति का कोई काल खंड उसका संपूर्ण जीवन नहीं होता। भले ही संस्मरण से यह अपेक्षा न की जाती हो कि वह उस व्यक्ति को संपूर्णता में प्रस्तुत करेगा, लेकिन फिर भी एक अच्छा संस्मरण एकांगिता और पूवग्रहों से अपने को बचाता है। इसीलिए संस्मरण लेखक के लिए यह ज़रूरी होता है कि अन्य उपलब्ध स्रोतों से ही वह अपने विषय के बारे में जानकारी प्राप्त करे और उसके पिछले जीवन और उसके विभिन्न पक्षों की सापेक्षता में अपना पक्ष प्रस्तुत करे। संस्मरण बहुत कुछ लेखक पर पड़े उस व्यक्ति के निजी प्रभाव का ही आकलन होता है। लेकिन इस प्रभाव का आकलन संबद्ध व्यक्ति की संपूर्णता में ही अधिक विश्वसनीय और ग्राह्य होगा। संस्मरण लेखक का यह काम उसे एक जीवनीकार के निकट ले आता है। जीवनी लेखक की तरह अपने विषय के बारे में अपेक्षित पृष्ठभूमि तैयार करके ही कोई संस्मरण लेखक अपने संपर्क-काल को अधिक पूर्ण और ग्राह्य बना सकता है।

संस्मरण और रेखाचित्र

अपने मूल रूप में 'रेखाचित्र' भले ही चित्रकला की दुनिया से आया शब्द हो, लेकिन साहित्य में गद्य की एक विधा विशेष के रूप में भी वह स्वीकार्य माना जाकर अपनी विशिष्ट पहचान बना चुका है। सामान्य अर्थ में रेखाचित्र व्यक्ति के बाह्य रूप का चित्र होता है जिसके द्वारा उसके व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है। उसके शरीर और विभिन्न अंगों की बनावट, उसके व्यक्तित्व को वैशिष्ट्य देनेवाले कुछ कारक, उसका पहनावा और बातचीत के बीच उसके क्रिया कलाप आदि का चित्रण उसका एक ऐसा रेखाचित्र प्रस्तुत करता है जो उसके सीधी-सादी पोशाक और बातचीत में ज़ोरदार ठहाके उनकी एक स्थायी पहचान बन चुके हैं। जिस व्यक्ति से अपने संपर्क का चित्र कोई संस्मरण लेखक देता है तो वह आवश्यक तौर पर यह बताता है कि उससे हुई भेंट के समय वह व्यक्ति क्या पहने था, कैसे और किस परिवेश में यह भेंट हुई थी और होने वाली बातचीत के बीच वह कैसा व्यवहार कर रहा था। संबद्ध व्यक्ति का यह रेखाचित्र उसकी एक विशिष्ट पहचान बनाकर पाठक तथा लेखक के बीच विश्वास और संवाद की स्थिति को पक्का करती है।

संस्मरण, पत्र और साक्षात्कार

संस्मरण में दो व्यक्तियों के बीच होने वाले संवाद और अनेक मुद्दों पर होने वाली बातचीत की भी एक विशिष्ट भूमिका होती है। यह संवाद ही वस्तुतः किसी संस्मरण को साक्षात्कार के निकट लाता है। संस्मरण की अपेक्षा साक्षात्कार अधिक औपचारिक विधा है जिसमें परिचय का सघन वृत्त उतना ज़रूरी नहीं होता जितना वह संस्मरण में होता है। लेकिन फिर भी संस्मरण में से साक्षात्कार के तत्व को निष्कासित कर पाना कठिन है। जिस व्यक्ति के संबंध
में संस्मरण लिखा जाता है उसका संस्मरण लेखक से पूर्व और दीर्घ परिचय भी हो सकता है। यह भी संभव है कि इस कालावधि में उस व्यक्ति ने संस्मरण लेखक को पत्र लिखे हों। अतः अपने संस्मरण में वह उन पत्रों का उपभोग भी करता है। पत्रों का ऐसा कोई उपयोग उस संस्मरण को प्रामाणिकता देता है। यह सारे उपकरण उस केंद्रीय व्यक्ति को अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण और विश्वसनीय रूप में हमारे सामने लाने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न-1

1. जैसे शरीर में रक्त प्रवाहित होता है, उसी प्रकार संस्मरण में :
   - क) औपचारिकता
   - ख) अंतरंगता
   - ग) अविश्वसनीयता
   - घ) उपर्युक्त तीनों ( )

2. रेखाचित्र का अर्थ क्या है?
   .....

3. जीवनी और संस्मरण में मूल अंतर क्या है?
   .....

18.4 'पथ के साथी' संस्मरण का पठन

हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों-ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं। पर जिनसे ऐसा संबंध नहीं होता वे फीके होते-होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।

मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे सख्य का चित्र, पहली कोटि में ही रखा जा सकता है, क्योंकि इतने वर्षों के उपरान्त भी उनकी सब रंग-रेखायें अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो?' दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल हो कर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति-अस्वीकृति की संधि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी

क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो ! दिखाओ अपनी कापी ' और उत्तर की प्रतीक्षा मे समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबंदियाँ अनायास पकड़ में आ गईं। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकड़ीं और वह हर कमरे में जा-जाकर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।

उस युग में कविता रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनने वालों के मुख की रेखायें इस प्रकार वक्रकुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटु-तिक्त पेय पीना पड़ा हो।

ऐसी स्थिति में गणित जैसे गम्भीर महत्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था। इससे बढ़कर कागज का दुरुपयोग और विषय का निरादर और हो ही क्या सकता था। फिर जिस विद्यार्थी की बुद्धि अंकों के बीहड़ वन में पग-पग पर उलझती है उससे तो गुरु यही आशा रखता है कि वह हर साँस को अंक जोड़ने-घटाने की क्रिया बना रहा होगा। यदि वह सारी धरती को कागज बना कर प्रश्नों को हल करने के प्रयास से नहीं भर सकता तो उसे कम से कम सौ-पचास पृष्ठ, सही न सही तो गलत प्रश्न-उत्तरों से भर लेना चाहिए। तब उसकी भ्रान्त बुद्धि को प्रकृतिदत्त मान कर उसे क्षमा दान का पात्र समझा जा सकता है, पर जो तुकबन्दी जैसे कार्य से बुद्धि की धार गोंठिल कर रहा है वह तो पूरी शक्ति से दुर्बल होने की मूर्खता करता है, अतः उसके लिए न सहानुभूति का प्रश्न उठता है न क्षमा का।

मैंने होंठ भींच कर न रोने का जो निश्चय किया वह न टूटा तो न टूटा। अन्त में मुझे शक्ति-परीक्षा में उत्तीर्ण देख सुभद्रा जी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छी तो लिखती हो। भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है! ' मेरी चोट अभी दुख रही थी, परन्तु उनकी सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखें सजल हो आईं। 'तुमने सब को क्यों बताया? ' का सहास उत्तर मिला 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।'

बहिन सुभद्रा का चित्र बनाना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिणी दीपशिखेव' बनकर उसे असाधारण कर देती है। एक-एक कर के देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जाएगा, परन्तु सब की समग्रता में जो उद्भासित होता था, उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था।

मझोल कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी.... सब कुछ मिला कर एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे। पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छन्द था, उसका पता तो तब मिलता था, जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के बीच में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी। 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हँसी निश्चय ही असाधारण थी। माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हँस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी में जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था। वह संक्रामक भी कम नहीं थी क्योंकि दूसरे भी उनके सामने बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे।

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढ़ने जायगी।

दूसरे दिन वह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गईं। गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में काँटे चुभ गए, कँटीली झाड़ियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अँधेरे करील-वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके विचारों से भी परिचित थे। उनसे यह छिपा नहीं था कि नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा

सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेहभरी बाहें फैलाए हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तौला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो। उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैय्या के सुख का अनुभव करती थीं।

एक बार भाई लक्ष्मणसिंह जी ने मुझ से सुभद्रा जी की स्नेहभरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझ से कभी कुछ नहीं माँगा।' सुभद्रा जी ने अर्थ भरी हँसी में उत्तर दिया था, 'इन्होंने पहले ही दिन मुझसे कुछ माँगने का अधिकार माँग लिया था महादेवी! यह ऐसे ही हौशियार हैं, माँगती तो वचन-भंग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं माँगा तो इनके अहंकार को ठेस लगती है।'

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है। कारागार में जो सम्पन्न परिवारों की सत्याग्रही मातायें थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा-मिष्ठान्न आता रहता था। सुभद्रा जी की आर्थिक परिस्थितियों में जेल-जीवन का ए और सी क्लास समान ही था। एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलने वाली महिला-कैदियों से थोड़ी-सी अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भून कर बालिका को खिलाया। घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी देकर बहलाना पड़ा था। पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रन्थि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छन्द लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथती थीं। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं। आँगन लीपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन के भिन्न-भिन्न छोरों से लीपना आरम्भ करते थे। लीपने में हमें अपने से बड़ा कोई विशेषज्ञ मध्यस्थ नहीं प्राप्त हो सका, अतः प्रतियोगिता का परिणाम सदा अघोषित ही रह गया पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकान्त तन्मयता केवल उसी गृहिणी में सम्भव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं। उस छोटे से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहीत किया। छोटे-बड़े पेड़, रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बच्छे आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच से उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशीला नारी जानती थी कि काँटों का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है तभी वे टूट कर दूसरों को बेधने की शक्ति खोते हैं। परीक्षायें जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती हैं तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

नारी के हृदय में जो गम्भीर ममता-सजल वीर-भाव उत्पन्न होता है वह पुरुष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत रागद्वेष के लिए भी वीर धर्म अपना सकता है और अहंकार की तृप्ति-मात्र के लिए भी। पर नारी अपने सृजन की बाधायें दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए रुद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष रखने योग्य प्रेरणाएं संसार के कोश में कम हैं। मातृशक्ति का दिव्य रक्षक उद्धारक रूप होने के कारण ही भीमाकृति चंडी, वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबाकर अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर-रस की घिसी-पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतर-व्यापिनी निष्ठा से जुड़ा हुआ है जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं मानी जा सकती। इसी से जहाँ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ।

थक कर बैठने वाला अपने न चलने की सफाई खोजते-खोजते लक्ष्य पा लेने की कल्पना कर सकता है, पर चलने वाले को इसका अवकाश कहाँ!

जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास ही उनके काव्य का प्राण है :

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास प्रेम साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।

मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब मधुर-तिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटाती, बहुत कुछ वैसा ही आदान-सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल-कठिन, सह्य-असह्य अनुभवों का परिपाक दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमे विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था। उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चमत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था तब वे कहती हैं, 'मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरुष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरुद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, 'समाज और परिवार व्यक्ति को बन्धन में बाँधकर रखते हैं। ये बन्धन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बन्धन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किये गये हों, हैं बन्धन ही, और जहाँ बन्धन है वहाँ असन्तोष है तथा क्रान्ति है।' परंपरा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्त्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बाँधती है, 'चिर-प्रचलित रूढ़ियों और चिर-संचित विश्वासों को आघात पहुँचाने वाली हलचलों को हम देखना-सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझ कर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किंतु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रांति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।'

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अंत भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रहीं, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतार कर उसे सृजन का रूप दिया था।

सुभद्रा जी के अध्ययन का क्रम असमय ही भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो नहीं मिल सकी, पर अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो सीखा उसे उनकी प्रतिभा ने सर्वथा निजी विशेषता दे दी है।

भाषा, भाव, छंद की दृष्टि से नये, 'झांसी की रानी' जैसे वीर-गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थवादी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

ऐसी प्रतिभा व्यावहारिक जीवन को अछूता छोड़ देती तो आश्चर्य की बात होती।

पत्नी की अनुगामिनी, अर्धांगिनी आदि विशेषताओं को अस्वीकार कर उन्होंने भाई लक्ष्मणसिंह जी को पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर अनुगमन किया जा सके।

अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस कर चर-चर कर देने वाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।

उस समय बच्चों के लालन-पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता-पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुँच जाते थे। सुभद्रा जी का कवि-हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था! अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देख कर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी माँ को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान ऐसा ही अलिखित और अटूट था।

अपनी संतान के भविष्य को सुखमय बनाने क लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक-भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरुद्ध उन्होंने घोषणा की, 'मैं कन्यादान नहीं करूँगी।

क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी?' उस समय तक किसी ने, और विशेषतः किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परंपरा-विरुद्ध बात नहीं कही थीं।

देश की जिस स्वतत्रंता के लिए उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अँगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनकी उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववन्द्य बापू की अस्थिविसर्जन के दिना प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँचीं। पर अन्य सम्पन्न परिवारों की सदस्यायें मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थिप्रवाह के उपरांत संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयम् सभा में सम्मिलित हुई।

सातवीं और पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह ने ऐसी अमिट लक्ष्मण-रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। अपने भाई-बहिनों में सबसे बड़ी होने के कारण मैं अनायास ही सब की देखरेख और चिंता की अधिकारिणी, बन गई थी। परिवार में जो मुझसे बड़े थे उन्होंने भी मुझे ब्रह्मसूत्र की मोटी पोथी में आँखें गड़ाये देखकर अपनी चिंता की परिधि से बाहर समझ लिया था। पर केवल सुभद्रा पर न मेरी मोटी पोथियों का प्रभाव पड़ा न मेरी समझदारी का। अपने व्यक्तिगत संबंधों में हम कभी कुतूहली बाल-भाव से मुक्त नहीं हो सके। सुभद्रा के मेरे घर आने पर भक्तिन तक मुझ पर रौब जमाने लगती थी। क्लास में पहुँच कर वह उनके आगमन की सूचना इतने ऊँचे स्वर में इस प्रकार देती कि मेरी स्थिति ही विचित्र हो जाती 'ऊ सहोदरा विचरि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा'। एम.ए., बी.ए. के विद्यार्थियों के सामने जब एक देहातिन बुढ़िया गुरु पर कर्त्तव्य-उल्लंघन का ऐसा आरोप लगाने लगे तो बेचारे गुरु की सारी प्रतिष्ठा किरकिरी हो सकती थी। पर इस अनाचार को, रोकने का कोई उपाय नहीं था। सुभद्रा जी के सामने न भक्तिन को डाँटना संभव था न उसके कथन की अपेक्षा करना। बँगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानमती का पिटारा खोले बैठी हैं और उसमें से अद्‌भुत वस्तुएँ निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली-सुनहली चूड़ियाँ आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा! पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता था।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछतीं, 'पसंद हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए, दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात एक मिनिट और हँसी पाँच मिनट का अनुपात रहता था। इसी से प्रायः किसी सभा-समिति में जाने के पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था। एक दूसरे की ओर बिना देखे गंभीर भाव से बैठे रहने की, प्रतिज्ञा करके भी वहाँ पहुँचते ही एक-न-एक वस्तु या दृश्य सुभद्रा के कुतूहली मन को आकर्षित कर लेता और मुझे दिखाने के लिए वे चिकोटी तक काटने से नहीं चूकतीं। तब हमारी शोभा-सदस्यता की जो स्थिति हो जाती थी, उसका अनुमान सहज है।

अनेक कवि-सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अंत तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया। आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परंतु मेरा प्रश्न उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जायगी, नहीं जायगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा, ईर्षा-द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक दूसरे के साहित्य-चरित्र-स्वभाव संबंधी निंदा-पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी।

* * *

वसंत पंचमी को पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भर कर सुभद्रा ने विदा ली। उनके लिए किसी अन्य विदा की कल्पना ही कठिन थी।

एक बार बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। मैंने कहा, 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियाँ गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओ तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनंद अच्छा है या नहीं।

* * *

उस दिन जब उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल-उज्ज्वल अंचल में समेट लिया तब नीलम-फलक पर श्वेत चंदन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर-मुख मुस्कराता जान पड़ा।

'यही कहीं पर बिखर गई वह छिन्न विजय-माला-सी!

बोध प्रश्न-2

1. 'क्या तुम कविता लिखती हो ?' यह प्रश्न किसने और किससे किया ?

   .....

2. 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' गीत की रचना किसने की ?

   .....

3. सुभद्रा कुमारी चौहान को बार-बार जेल क्यों जाना पड़ता था ?

   .....

18.5 संस्मरण का सार

महादेवी वर्मा कवयित्री ही नहीं, चित्रकार भी थीं। सुभद्रा कुमारी चौहान संबंधी अपने संस्मरण का प्रारंभ वे चित्रों और चित्रशाला वाले रूपक की भाषा में करती हैं। स्मृतियों की वे दो कोटियाँ बनाती हैं। शैशव की चित्रशाला में जिन चित्रों से गहरा रागात्मक संबंध होता है, उन चित्रों की रेखाएँ स्थायी होती हैं जिन्हें वार्धक्य की धुँधली आँखों से भी स्पष्ट और प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इन रागात्मक संबंधों के अभाव में बने चित्र समय बीतने के साथ ही धुँधले पड़ कर मिटने लगते हैं। सुभद्रा के साथ स्कूली दिनों के अपने संबंध को वे प्रथम कोटि में रखती हैं - जिसकी रागात्मकता उस चित्र को कभी धुँधला नहीं होने देती । लगभग चार दशकों का यह संबंध सुभद्रा के असामायिक निधन से ही समाप्त होता है - लेकिन उनकी स्मृतियाँ फिर भी बनी रहती हैं।

सुभद्रा महादेवी से उम्र में कुछ बड़ी थीं और क्रास्थवेट कालेज इलाहाबाद में ही उनसे दो कक्षाएँ आगे थीं। महादेवी कक्षा पाँच में थीं और सुभद्रा कक्षा सात में। कविता लिखने की समान रुचि उनकी मित्रता का मुख्य नियोजक सूत्र था। गणित की कापी पर चोरी-चोरी लिखी गई महादेवी की कविताओं को उन्होंने पकड़ा था और फिर इस बात से उन्हें बल मिला था कि अब इस क्षेत्र में वे अकेली न होकर दो हैं। उस दौर में किसी लड़की का कविता लिखना सामाजिक दृष्टि से अपराध की कोटि में आने वाला शौक़ ही था।

सुभद्रा के इस अन्वेषण के बाद इस संख्या को तेज़ी से विकसित होता देखा जा सकता है। उसके बाद दो सखियों की यह मित्रता पारिवारिक बहनापे में बदल जाती है। बाद के वर्षों में कई बार दोनों ने एक ही मंच से कविताएँ पढ़ीं। सुभद्रा का विवाह छोटी उम्र में ही लक्ष्मण सिंह से हो गया था जो स्वतंत्रता सेनानी होने के नाते अधिकतर समय जेल में ही रहते थे। सुभद्रा भी पति की आदर्श संगिनी बनीं और जेल में भी उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया। उनकी काव्य पंक्ति 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना...' उनके मन की बनावट का बहुत अच्छा परिचय है। संक्रामक हँसी और स्वभाव की दृढ़ता - उनकी मुख्य पहचान के रूप में रेखांकित की जा सकती है। वे कविताओं में ही नहीं, जीवन में भी विद्रोहिणी थीं। सारे सामाजिक विरोध के बीच उन्होंने अपनी बेटी सुधा का अंतर्जातीय विवाह प्रेमचंद के छोटे बेटे अमृतराय से किया था और हिंदू विवाह की अनिवार्य प्रथा का विरोध करके कन्यादान नहीं किया था - क्योंकि कन्या कोई निर्जीव वस्तु नहीं है जिसे दान में दिया जा सके। आर्थिक अभावों के

बीच, उत्साहपूर्वक उन्होंने अपनी गृहस्थी जमाई थी। लेकिन उनके आर्थिक अभावों ने उनमें किसी प्रकार की दीनता नहीं आने दी। अपने घर की धरती को उन्होंने संपूर्ण निष्ठा के साथ चाहा और प्यार किया। विश्वास, प्रेम और साहस के सहारे वे जीवन भर 'सुख भरे सुनहरे बादल' से घिरी रहीं। एक आदर्श पत्नी और महिमामयी माँ का उनमें अद्‌भुत संयोग था।

संबंधों की यही ऊष्मा उन्होंने दूसरों को भी दी। महादेवी ने अपने संस्मरण में स्पर्द्धा-भाव से दो छोरों से शुरू करके गोबर से आँगन लीपने के प्रसंग की चर्चा की है। जीवन की व्यस्तताओं में बाद में उन दोनों को वैसे अवसर सुलभ न होने पर भी किशोरावस्था का यह सखी-भाव हमेशा बना रहा। कभी इलाहाबाद की ओर से निकलते हुए यदि सुभद्रा वहाँ रुक पाने की स्थिति में नहीं होतीं तो सूचना मिलने पर महादेवी उनसे स्टेशन पर ही मिल लेती थीं। जब रूकने का अवसर और संयोग बनता था तो महादेवी के साथ रुककर अपनी अमृत-वर्षा से वे उन्हें नहलाती थीं। कालेज से लौटने पर महादेवी देखती थीं कि बंगले के बरामदे में सुभद्रा भानुमती का अपना पिटारा खोले बैठी हैं। छोटे-छोटे पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली-सुनहरी चूड़ियाँ .... और भी न जाने क्या-क्या। यह सब छोटी बहिन महादेवी के लिए होता था। कभी कवि सम्मेलन में भेंट की अपेक्षा में वे उनके लिए थैले में खरीदी गई चूड़ियाँ डालकर चलती थीं। मिलने पर बहुत स्नेह से निकालकर उन्हें दिखा कर उनकी पसंद पूछती थीं और फिर उनका हाथ अपने हाथ लेकर स्वयं ही पहनाती थीं कि स्वयं से महादेवी इन्हें तोड़ डालेगी। चूड़ियाँ पहनाकर वे बच्चों की तरह प्रसन्न हो जाती थीं।

अपनी उल्लासपूर्ण प्रकृति के अनुरूप ही, एक दुर्घटना में हुई मृत्यु से, पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भरकर वसंत पंचमी के दिन सुभद्रा ने संसार से विदा ली। अपनी समाधि पर मेले की उनकी कल्पना शायद साकार हुई थी। त्रिवेणी के श्यामल-उज्ज्वल अंचल में उनके पार्थिव अवशेष को प्रवाहित देख महादेवी के स्मृति-पटल पर उनका वही चेहरा था जो वर्षों पहले बचपन में उन्होंने देखा था।

18.6 संस्मरण की अंतर्वस्तु

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरणों का संकलन 'पथ के साथी' 1956 में प्रकाशित हुआ था। इस शीर्षक से ही इस संकलन की प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। इसमें उनके उन सहयोगियों और सहकर्मियों की चर्चा है जो उनकी रचना-यात्रों में उनके साथ-साथ चले। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, सुभद्राकुमारी चौहान, नरेन्द्र शर्मा आदि हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ साहितयकार हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान के बारे में लिखा उनका संस्मरण इस इकाई में पाठ के रूप में सम्मिलित किया गया है। हिंदी समाज उनके नाम से भली भांति परिचित है। देश भक्ति से परिपूर्ण वीरता और ओज से भरे गीतों के लिए वह अत्यंत प्रसिद्ध रही है। 'खूब लड़ी मरदानी, वह तो झांसी वाली रानी थी' आज भी लोगों में देश भक्ति का जोश भर देता है। इसी तरह 'वीरों का कैसा हो बसंत' गीत भी अत्यंत लोकप्रिय रहा है। इन्हीं सुभद्रा कुमारी चौहान पर महादेवी वर्मा ने यह संस्मरण लिखा है।

सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा दोनों एक ही विद्यालय में पढ़े थे। सुभद्राजी, महादेवी से बड़ी थी और अपने छात्र जीवन से ही कविता लिखने का उन्हें भी शौक था। यही वजह थी कि लड़कियाँ या तो कविताएं लिखती ही नहीं थी या लिखती भी तो छुप-छुपाकर। महादेवी जी भी कविताएं लिखती थी, यह बात सुभद्रा जी को पता चली और फिर इन्हीं कविताओं ने दो कवयित्रियों को एक दूसरे के इतने करीब ला दिया।

सुभद्राजी का विवाह उसी समय हो गया था, जब वह कक्षा आठ में पढ़ रही थी। लेकिन ऐसे व्यक्ति के साथ जो स्वतंत्रता सेनानी था और जिसे लगातार कारागर की सजा होती रहती थी। ऐसे व्यक्ति की पत्नी बनने का अर्थ था, जीवन के दाम्पत्य सुखों को तिलांजलि देना और दुखों की शय्या पर ही जीवन काट देना। लेकिन सुभद्राजी ने ऐसा कुछ नहीं किया। अपने पति के साथ वह भी आजादी की लड़ाई में शामिल हो गई और कारागर की यात्रा उनके जीवन की यात्रा भी बन गई। घर-गृहस्थी और बच्चों के लालन-पालन के साथ-साथ देश की आजादी को भी जीवन का हिस्सा बना लेना सरल काम नहीं था। यह किसी पुरुष के बस की बात नहीं हो सकती थी। महादेवी ने उनके जीवन के इस पक्ष को अत्यंत मार्मिक ढंग से उजागर किया है।

'घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरंभ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थी यह सोचकर विस्मय होता है।'

सुभद्राजी के व्यक्तित्व पर रोशनी डालते हुए महादेवी जी लिखती हैं कि 'अपने निश्चित लक्ष्य पथ पर अडिग रहना और सब कुछ हँसते हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था।' आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद उनके चरित्र का यह पक्ष उन्हें और महान् बना देता है। लेकिन राजनीतिक जागरुकता ही उनके व्यक्तित्व में नहीं थी, सामाजिक जागरुकता भी उतनी ही अधिक थी। कविता लिखकर जिस विद्रोही स्वभाव का परिचय उन्होंने बचपन में दिया था, वह जीवन पर्यंत रहा। अपने बच्चों पर किसी तरह का अंकुश लगाने की बजाए उन्होंने उन्हें स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ने का अवसर दिया। इसी तरह अपनी बेटी का अंतरजातीय विवाह कर उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में जो साहस का परिचय दिया वह इस बात से और भी मुखर रूप में सामने आता है कि उन्होंने यह कहते हुए कन्यादान की प्रथा का विरोध किया कि स्त्री कोई निर्जीव वस्तु नही है जिसका कि दान किया जा सके।

अपने पारिवारिक जीवन में ही नहीं सामाजिक-राजनीतिक जीवन में भी उन्होंने अपने प्रगतिशील साहसपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय बराबर दिया। महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद इलाहाबाद में अस्थिविसर्जन के अवसर पर हरिजन महिलाओं के अधिकारों के लिए उन्होंने जो संघर्ष किया वह इसी बात का प्रमाण है।

अपने जीवन में सुभद्राजी ने जो कुछ भी किया, महादेवी वर्मा ने अपने इस संस्मरण में उसके पीछे उनकी सुविचारित दृष्टि बताई है। सुभद्राजी का यह कथन इस बात का द्योतक है :

'समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बांधकर रखते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बंधन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किये गये हों, हैं बंधन ही, और जहाँ बंधन है वहाँ असंतोष तथा क्रांति है।'

सुभद्राजी का उपर्युक्त कथन इस बात का प्रमाण है कि अपने समय और समाज के प्रति उनमें कितनी जागरूक थी और सुविचारित दृष्टि के साथ सारी बातों को समझने की वे क्षमता रखती थी। सुभद्राजी के व्यक्तित्व के इन पहलुओं को संस्मरण के माध्यम से महादेवी वर्मा ने जिस तरह से उजागर किया है, वह उनकी लेखकीय क्षमता का श्रेष्ठ प्रमाण है।

सुभद्रा कुमारी चौहान के असामयिक निधन के बाद सन् 1949 में जबलपुर में उनकी मूर्ति का अनावरण करते हुए महादेवी वर्मा ने कहा था, 'नदियों के जय-स्तम्भ नहीं बनाये जाते और दीपक की लौ को सोने से नहीं मढ़ा जाता.....' महादेवी की इस उक्ति में उनके संस्मरण का प्रतिपाद्य भी ढूंढ़ा जा सकता है। नदी और दीपक की लौ से सुभद्रा के व्यक्तित्व की तुलना करके वे जैसे उनकी गतिशीलता और तेजस्विता को ही श्रद्धांजलि दे रही थीं। लेकिन उनके व्यक्तित्व के प्राकृतिक गुणों के संपूर्ण स्वीकार के बावजूद इसमें किसी प्रकार की अतिरंजना का निषेध भी शामिल है।'पथ के साथी' के अन्य संस्मरणों की तरह सुभद्रा के व्यक्तित्व के भी वे आधारभूत मानवीय पक्षों पर अपने को केंद्रित करके चलती हैं। ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो महादेवी के काव्य की अपेक्षा उनके गद्य को अधिक जीवंत और यथार्थवादी मानते हैं। उनके गद्य की इस जीवंतता का कारण उनका यही यथार्थ और वास्तव के प्रति उनका लगाव है। संस्मरण के केंद्र में रखे गए व्यक्ति को वे भरपूर आदर देती हैं। आत्मीयता और अंतरंगता की झिलमिल ज्योति उस व्यक्तित्व के चारों ओर झिलमिलाती है लेकिन वास्तविकता की जमीन पर खड़ी होकर ही वे उसके गुणों का बखान करती हैं। सुभद्रा के संस्मरण में भी सुभद्रा के जीवन का यथार्थ, आर्थिक अभाव और अपनी गृहस्थी के साम्राज्य के प्रति उनकी छोटी-छोटी आकांक्षाएँ इस संस्मरण को गहरी विश्वसनीयता देता है। उनका सारा ध्यान व्यक्ति की विशिष्टताओं को पकड़ने पर केंद्रित रहता है। इस प्रक्रिया में उस केंद्रीय व्यक्तित्व की चिंता ही उनकी मुख्य रचनात्मक चिंता होती है। वे उसी का संस्मरण लिखती हैं, उसके बहाने अपना नहीं। युगीन परिवेश के विस्तार में जाकर वे केंद्रीय व्यक्तित्व की चारित्रिक रेखाओं को धूमिल नहीं करतीं। क्षुद्रताओं की अपेक्षा वे व्यक्तित्व की विराटता से साक्षात्कार को ही अपने संस्मरण का प्रस्थान बिंदु मानकर अपनी रचना-यात्रा शुरू करती हैं। संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति और दार्शनिक परंपराओं का विशाल भंडार उनके सामने होने से वे उस व्यक्तित्व का आकलन इसी सुविस्तृत फलक पर करती

हैं। उनकी रचना की प्रामाणिकता का मूल स्रोत भी वस्तुतः यही है। इन सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति अपने गहरे लगाव के कारण ही वे शायद मानती हैं कि मृतात्माओं के उज्ज्वल पक्ष का ही स्मरण किया जाना चाहिए। उन्हें स्मृति में धारण करके ही उन्हें मरण और विस्मरण से बचाया जा सकता है।

18.7 संस्मरण की भाषा-शैली

भाषा

किसी भी रचना में भाषा अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है। रचना में भाषा की वही भूमिका होती है जो मनुष्य के शरीर में प्रवाहित रक्त की होती है। भाषा के द्वारा ही लेखक अपनी अभिव्यक्ति को सटीक और प्रभावशाली बनाता है। महादेवी वर्मा के संदर्भ में यह उल्लेख पहले भी किया जा चुका है कि वे मूलतः कवयित्री हैं, लेकिन विभिन्न प्रकार का गद्य भी उन्होंने लिखा है। महादेवी के विवेचनात्मक गद्य का एक प्रतिनिधि संकलन वर्षों पहले गंगा प्रसाद पाण्डेय के संपादन में प्रकाशित हुआ था। इसी प्रकार उन्होंने रेखाचित्रों और संस्मरणों में भी गद्य के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया है। उनके गद्य की भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों से भरपूर होने पर भी क्लिष्ट और दुर्बोध भाषा नहीं है। उपमाओं और रूपकों के प्रयोग से बनी यह भाषा उनके मन्तव्य को संप्रेषित करने में सहायक होती है। उनकी गद्य भाषा का एक प्रतिनिधि उदाहरण प्रस्तुत है : 'शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्ध्यक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं ...' बोलचाल के सामान्य शब्दों के बजाय संस्कृत मूल के तत्सम शब्दों के प्रयोग के प्रति उनकी विशेष रूचि है। चित्रकार होने के कारण उनकी भाषा में चित्र-कर्म के उपकरणों का उपयोग बहुत हुआ है, उनके गद्य में एक प्रीतिकर चित्रमयता के दर्शन भी होते हैं, जिसे छायावादी काव्य के एक आधारभूत वैशिष्ट्य के रूप में रेखांकित किया गया है। महादेवी वर्मा सुभद्रा के व्यक्तित्व का रेखांकन अपनी इस प्रिय चित्र पद्धति से करती हैं '.....मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमाकर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़तासूचक ठुड्डी .....सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे...' सम्प्रेषण के लिए वे निःसंकोच संस्कृत मूल और पृष्ठभूमि वाले शब्दों का चयन तो बहुत सहज रूप में करती ही हैं -- भावस्नात, अन्वेषिका वक्र कुंचित आदि -- उपमाओं में वे संस्कृत पदावली का उपयोग भी करती हैं। सुभद्रा के व्यक्तित्व के संदर्भ में 'संचारिणी दीपशिखेव' लिखकर वे उस व्यक्तित्व की असाधारणता का संकेत देती हैं।

महादेवी की भाषा संस्कृत और मध्यकालीन हिंदी काव्य की अंर्तप्रवृत्ति की गूँज वाली भाषा है। सूर की गोचारण संस्कृत की सघन और अर्थपूर्ण पदावली का उपयोग वे सुभद्रा के बचपन की कुछ घटनाओं के प्रसंग में बेहद साभिप्राय रूप में करती हैं। कीकर और बबूल के जंगल में गायों और ग्वालों के झुंड के बीच, गोधूली बेला में गोपी बनने की साध में भटकती बच्ची के रूप में सुभद्रा की आकांक्षाओं का कुछ ऐसा ही चित्र लेखिका ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अपनी गृहस्थी में कभी सुभद्रा के आर्थिक अभावों के प्रसंग में वे द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा के प्रसंग को याद करती हैं -- जिसमें चावल के धोल का सफेद पानी देकर दूध के नाम पर, बहलाने की किंवदंती प्रचलित है। महादेवी की गद्यभाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम पदावली के व्यापक उपयोग के बावजूद किसी भी स्तर पर बोझिल, भ्रमसाध्य और दुर्बोध होने का बोध नहीं जगाती है। पुष्पाभरणा, आलोकवसना, पार्थिव अवशेष, श्यामल-उज्ज्वल, नीलम फलक जैसे प्रयोग इस भाषा के सहज प्रवाह को बाधित नहीं करते हैं। इसका एक मात्र कारण यह है कि इन शब्दों को परिश्रम-पूर्वक ढूँढ़कर वे भाषा में नहीं लाती हैं। यह उनकी गद्य-भाषा की सहज प्रकृति है। उसकी यह सहजता ही उसे किसी भी स्तर पर दुर्बोध होने से बचाती है।

शैली

किसी भी संस्मरण की श्रेष्ठता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें संबद्ध व्यक्ति को कितनी आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया जा सका है। संस्मरण उस व्यक्ति के जीवन के ही कुछ विशिष्ट क्षणों और प्रसंगों को प्रस्तुत करता है। संस्मरण में जीवनी की तरह विस्तार और फैलाव की गुंजाइश नहीं होती। न ही वह साक्षात्कार की तरह एक के बाद एक प्रश्न प्रस्तुत करके समाप्त हो जाता है। संक्षिप्ति और सघनता संस्मरण को प्रभावी बनाते हैं। इस अर्थ में संस्मरण की तुलना प्रगीत और कहानी जैसी छोटे आकार वाली विधाओं से की जा सकती है जिनमें प्रभाव सघनता ही उनकी सफलता का सबसे

बड़ा निकष होता है। संस्मरण-लेखक संबद्ध व्यक्ति के अपने परिचय से शुरू करके उसके व्यक्तित्व के आधारभूत वैशिष्ट्य का आकलन भी प्रस्तुत करता है। *पथ के साथी* में सुभद्रा कुमारी चौहान से संबद्ध महादेवी का संस्मरण स्कूली दिनों में दोनों सखियों की निकटता से शुरू होता है। कविता के प्रति समान रूचि के आधार पर इस मैत्री को विकास का अवसर मिलता है। इस संक्षिप्त संस्मरण में महादेवी सुभद्रा को उनके संपूर्ण जीवन-फलक पर फैलाकर देखती हैं और उनके विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करती चलती है। दूसरी रचनाओं की तरह संस्मरण में भी संबद्ध व्यक्ति के चारित्रिक वैशिष्ट्य को उभारना लेखक का मुख्य अभिप्रेत होता है। महादेवी ने सुभद्रा का गृहिणी रूप, ममतामयी माँ, आदर्श पत्नी के साथ आर्थिक अभावों के बीच भी उनके मस्त और आनंदी स्वभाव के स्रोतों का उद्घाटन बड़े कलात्मक रूप में किया है। इसी तरह वे उनके चरित्र के विद्रोही और प्रगतिशील पक्ष पर भी सटीक टिप्पणी करती हैं – पुत्री सुधा के अंतर्जातीय विवाह की स्वीकृति देने के साथ ही विवाह में कन्यादान की रूढ़ि का विरोध करके। संपूर्ण जीवन में से कुछ पक्षों और प्रसंगों का यह चयन ही संस्मरण के प्रभाव का आधारभूत घटक होता है। अपने निजी प्रसंगों में भी वे सुभद्रा की ममता और अन्तरंगता के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उनके द्वारा लाई ढेरों सौगातें और छोटी बहिन जैसा प्यार महादेवी गहरी कृतज्ञता के साथ याद करती हैं। कवि सम्मेलन में हुई भेंट के अवसर पर थैले में से निकाल अपने हाथ से उनका महादेवी को चूड़ी पहनाना और इस बात की चिंता कि स्वयं पहनने से महादेवी से वे टूट सकती हैं, उनकी इस गहरी आत्मीयता को ही छूना और पकड़ना है। छोटे मालूम होने वाले प्रसंगों के पीछे छिपी आत्मीयता को इस रूप में पकड़ना ही संस्मरण के प्रभाव को बढ़ाता है। अपने इस संक्षिप्त संस्मरण में महादेवी ने सुभद्रा के अहेतुक स्नेह को गहरी आत्मीयता के साथ याद किया है। आज जब उपभोक्ता संस्कृति की आँधी में जीवन का अर्थ ही बहुत कुछ बदल गया है, ऐसा अहेतुक स्नेह कृतज्ञता के साथ एक अवसाद का बोध भी जगाता है। संस्मरण में स्मृति की विशिष्ट भूमिका होती है। इन स्मृति-खंडों को सजीव और विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करने वाली भाषा महादेवी के पास है। जीवनी की तरह संस्मरण में अपने चरितनायक पर पड़ने वाले युगीन प्रभावों और परिवेश के बीच उसके विकास को अंकित करने की सुविधा नहीं होती। यहाँ छोटे-छोटे प्रसंगों के बीच ही उसके चरित्र की रेखाओं को उकेरा जाता है। इस प्रक्रिया में अंतरंगता का चमत्कारी प्रभाव होता है। इस अंतरंगता के अभाव में किसी अच्छी संस्मरण की कल्पना भी कठिन है। 'पथ के साथी' में संकलित अन्य संस्मरण की तरह सुभद्रा कुमारी चौहान संबंधी अपने संस्मरण में भी महादेवी संक्षिप्त और सघनता के संतुलन को साध पाने में सफल रही है।

बोध प्रश्न-3

1. सुभद्रा कुमारी चोहान के चरित्र में निम्नलिखित में से कौन सा गुण था ?
   - क) दृढ़ता
   - ख) विद्रोही
   - ग) देशभक्ति
   - घ) उपर्युक्त तीनों ( )

2. संस्मरण की भाषा की कोई तीन विशेषताओं का नामोल्लेख कीजिए

   .....

   .....

   .....

3. 'संस्मरण' की शैलीगत दो विशेषताओं का नामोल्लेख कीजिए।

   .....

   .....

4. संस्मरण के आधार पर सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रमुख चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

5. परिवार के संदर्भ में सुभद्राजी के विद्रोहिणी रूप के दो उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6. संस्मरण की भाषा-शैली की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

18.8 सारांश

- एफ.एच.डी.-2 के तीसरे खंड की इस अंतिम इकाई में आपने संस्मरण के बारे में अध्ययन किया है। संस्मरण के अध्ययन के लिए इस पाठ में महादेवी वर्मा द्वारा सुभद्रा कुमारी चौहान के बारे में लिखे संस्मरण को पढ़ा है। सुभद्राजी महादेवी की ही समकालीन कवयित्री थीं और अपनी वीरतापूर्ण कविताओं के लिए अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी की गहरी मित्र भी थी। उनके बारे में इस संस्मरण के माध्यम से हमें सुभद्राजी के व्यक्तित्व की कई विशेषताओं का परिचय मिलता है। देशभक्त नारी, ममतामयी माँ, पति की मित्र और सहचर, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोही और स्नेहिल सखी का रूप हमारे सामने उजागर होता है।
- संस्मरण गद्य साहित्य की विशिष्ट विधा है। लेखक जिसके बारे में संस्मरण लिखता है उसके व्यक्तित्व का संपूर्ण चित्र वह हमारे सामने उपस्थित कर देता है, इस दृष्टि से यह संस्मरण अत्यंत प्रभावशाली है।
- महादेवी का गद्य अत्यंत भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी होता है। संक्षेप में अपनी बात पूरी गंभीरता और सघनता के साथ कहने की उनमें अद्‌भुत क्षमता है, इस दृष्टि से यह संस्मरण भी उल्लेखनीय है। संस्मरण की शैलीगत सभी विशेषताएं हमारे सामने उभरकर आती है।
- सुभद्रा कुमारी चौहान पर लिखे इस संस्मरण की भाषा महादेवी वर्मा के गद्य का उत्कृष्ट नमूना है। उनका झुकाव संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली की ओर है। लेकिन उनकी भाषा क्लिष्ट और दुर्बोधगम्य नहीं है। अपनी बात को सहज और प्रवाहमय ढंग से कह सकने के कारण उनकी भाषा कहीं भी बाधक बनकर उपस्थित नहीं होती। शब्दों से व्यक्ति का सजीव चित्र उतार लेना उनकी इसी भाषा का कमाल है।
- इकाई के आरंभ मं संस्मरण पर साहित्यिक विधा के रूप में भी विचार किया गया है और इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि वह अन्य गद्य विधाओं विशेष रूप में जीवनी, पत्र, साक्षात्कार और रेखाचित्र की विशेषताओं को अपने में किस रूप में समाहित करता है।

इस इकाई के अध्ययन से आपको संस्मरण विधा को समझने में सहायता मिली होगी।

18.9 शब्दावली

वार्धक्य	:	बुढ़ापा
सख्य	:	मित्रता
अन्वेषिका	:	खोज करने वाली
वक्रकुंचित	:	टेढ़ी-मेढ़ी

कटु-तिक्त	:	कड़वा और तीखा
गोंठिल	:	भोथरा
कृश	:	कमज़ारे
सहास	:	हँसी के साथ
संचारिणी दीपशिखेव	:	निरंतर जलने वाली दिये की लौ
देहयष्टि	:	शरीर
भावस्नात	:	भाव से सराबोर
नासिका	:	नाक
संक्रामक	:	एक से दूसरे में फैलने वाला
लकुटी	:	लाठी
कीकर	:	बबूल का पेड़
गोधूलि वेला	:	शाम का वक्त
करील-वन	:	कँटीले और बिना पत्ते वाले पेड़ों का जंगल
अनाहूत	:	बिना-बुलाया
उत्स	:	स्रोत
मधुमक्षिका	:	मधुमक्खी
रसाल	:	आम, मीठा
सम्प्रदान	:	देना
परिपाक	:	पूर्ण विकास, निपुण
महीयसी	:	महान्
ब्रह्मसूत्र	:	बादरायण कृत संस्कृत ग्रंथ जिसमें ब्रह्म संबंधी विचार दिए गए है।
पुष्पाभरणा	:	फूलों के आभूषण
आलोकवसना	:	प्रकाश के वस्त्र पहने हुए

18.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. ख
2. रेखाचित्र व्यक्ति के बाहरी रूप का चित्र होता है जिसके द्वारा उसके व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है।
3. जीवनी में व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का आकलन किया जाता है और संस्मरण में व्यक्ति के उस जीवन का ही वर्णन होता है जिससे संस्मरणकार का संबंध होता है।

बोध प्रश्न - 2

1. यह प्रश्न सुभद्रा कुमारी चौहान ने महादेवी वर्मा से विद्यार्थी जीवन में किया था।
2. इस गीत की रचना सुभद्रा कुमारी चौहान ने की थी।
3. सुभद्रा कुमारी चौहान ने आजादी के आंदोलन में भाग लिया था और उसी वजह से अंग्रेज सरकार उन्हें बार-बार गिरफ्तार कर लेती थी।

बोध प्रश्न - 3

1. घ)
2. क) संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली
   ख) सरल और बोधगम्य
   ग) सहज प्रवाहमयी
3. क) संक्षिप्तता
   ख) सघनता

4. सुभद्राजी की चारित्रिक विशेषताएं
   (क) राष्ट्रभक्ति
   (ख) आदर्श गृहिणी
   (ग) ममतामयी माँ

(घ) पति की मित्र और सहचर
(ङ.) रूढ़ियों के प्रति विद्रोह

शेष प्रश्नों के उत्तर इकाई पढ़कर स्वयं लिखिए।